इस लेख में राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों पर शुरू हुए विवाद का एक संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। यह ब्यौरा बहस में शामिल विभिन्न पक्षों द्वारा अपने पक्ष में दिए गए तर्कों से परिचित करवाता है। साथ ही इन पाठ्यपुस्तकों पर कुछ अध्यापकों और विद्यार्थियों की प्रतिक्रियाओं को भी दर्ज करता है।

रहबरे मुल्क का सियासी फैसला

निरंजन सहाय

देश की सबसे बड़ी पंचायत में एक बार फिर एनसीईआरटी की किताबें कटघरे में खड़ी की गई हैं। इस बार सवालों के घेरे में राजनीति विज्ञान की किताबें हैं। मुद्दा विशेष रूप से ग्यारहवीं और बारहवीं की किताबों से उठा और फिर कार्टूनों की मौजूदगी तक विस्तृत हो गया। दलित अस्मिता से शुरू हुई बहस द्रविड़ अस्मिता तक पहुंची। बीच में इस हंगामेदार सवाल को भी जनप्रतिनिधियों ने दलीलों के साथ मानीखेज बनाने की कोशिश की कि क्यों न कार्टूनों को ही पाठ्यपुस्तकों से पूरी तरह बहिष्कृत कर दिया जाए जिनसे विद्यार्थियों के कच्चे मन (?) पर दुष्प्रभाव पड़ने की आशंका है। हंगामे में सभी राजनैतिक दलों के लोग शामिल हो गए, फिर दलित विचारकों का एक समूह भी इस मांग के साथ शामिल हुआ कि डॉ. अंबेडकर के कार्टून को एनसीईआरटी की ग्यारहवीं की राजनीति विज्ञान की किताब से हटाया जाए क्योंकि इससे दलित अस्मिता पर प्रहार होता है। यहां यह याद कर लेना लाजमी होगा कि तकरीबन दो दर्जन दलित विचारकों (नामदेव ढसाल, बामा, सुसी थारू, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शर्मिला रेगे, राधिका मेनन, उर्मिला पवार आदि) ने यद्यपि परिषद् की पुस्तकों के सकारात्मक योगदान को याद किया बावजूद इसके डॉ. अंबेडकर के कार्टून को शामिल किए जाने पर आपत्ति दर्ज करते हुए उसे हटाने की मांग की। मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल ने फौरी तौर पर आपत्तियों को जायज ठहराते हुए, पूरे मामले की जांच के लिए जाने-माने अर्थशास्त्री और विचारक प्रो. सुखदेव थोराट की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया है। फिलवक्त माननीय सांसदों ने पूरे मसले के राजनैतिक पहलुओं पर सुविचारित मुद्रा अख्तियार की है। वहीं शिक्षा से जुड़े लोगों और संवेदनशील लोकतंत्र की विकास यात्रा में दिलचस्पी रखने वाले लोगों को भी समिति के निर्णय का बेसब्र इंतजार है। जरूरत इस बात की है कि इस मुद्दे

परिचय

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। समाज, संस्कृति और शिक्षा के अन्तर्संबंधों पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लिखते रहते हैं।

से जुड़े पहलुओं पर नजर डाली जाए। इस संपूर्ण मुद्दे के मुख्य रूप से चार पहलू हैं :

- डॉ. अंबेडकर कार्टून का वह भाष्य जहां से बहस चली
- आपत्तियों की दलील पर एक नजर और सवाल शैक्षिक विमर्श के नवाचारों का
- शिक्षकों-विद्यार्थियों की नजर में कार्टून और
- नवाचार का संसार।

पूरे मसले को समझने के लिए जरूरी है कि इन सभी बिन्दुओं का सिलसिलेवार सफर की जाए।

डॉ. अंबेडकर कार्टून का वह भाष्य जहां से बहस चली

सफर की शुरुआत 2 अप्रैल 2011 से हुई। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआइ) आठवले ग्रुप ने मुंबई में प्रेस कॉन्फ्रेंस कर डॉ. अंबेडकर के एक कार्टून का हवाला देते हुए इस बात पर तल्ख प्रतिक्रिया जाहिर की कि उक्त कार्टून में डॉ. अंबेडकर का अपमान हुआ है। पार्टी ने उस पुस्तक पर बैन लगाने की मांग की जिसमें कार्टून प्रकाशित हुआ। (Scholars quit textbook body as government bans 1949 cartoon, The Hindu, 12 May 2012 New Delhi) गौरतलब है यह पुस्तक एनसीईआरटी की कक्षा ग्यारह के पाठ्यक्रम में शामिल राजनीति शास्त्र की पुस्तक है। किताब के अध्याय 'संविधान क्यों और कैसे' के पृष्ठ 18 पर शामिल इस कार्टून को अपने जमाने के विख्यात कार्टूनिस्ट शंकर उर्फ के. शंकर पिल्लई ने 1949 में बनाया था। इसमें डॉ. भीमराव अंबेडकर को एक घोंघे पर बैठे दिखाया गया है। घोंघे की नकेल डॉ. अंबेडकर के बांए हाथ में है, जबकि उनके दांए हाथ में एक चाबुक है। उनके पीछे जवाहरलाल नेहरू को भी चाबुक फटकारते हुए चित्रित किया गया है। कार्टून यह बताने का प्रयास करता है कि संविधान निर्माण का काम धीमी गति से चल रहा था। कार्टून जब पहली बार छपा, संविधान सभा अपने काम में लगी हुई थी।

2 अप्रैल के प्रेस कॉन्फ्रेंस के दौरान रामदास आठवले ने पुस्तक के उस पृष्ठ की प्रतियों को जलाकर अपनी नाराजगी जाहिर की। उन्होंने इस दौरान अपने वक्तव्य में कहा कि चूंकि मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल एनसीईआरटी की समस्त समितियों के पदेन अध्यक्ष भी हैं लिहाजा उन्हें प्रकरण की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए अपने पद से इस्तीफा दे देना चाहिए। संसद के दोनों सदनों में 11 और 14 मई, 2012 को इस मुद्दे पर जोरदार बहस हुई। दोनों सदनों में कार्टून की निंदा और बाबा साहेब के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने की जैसे होड़ मच गई। रामविलास पासवान ने अनुसूचित जाति अत्याचार निवारण कानून के तहत उन लोगों के खिलाफ कार्रवाई करने की मांग की जिन्होंने कार्टून को छपने की इजाजत दी। मायावती ने कहा कि जब तक कार्रवाई नहीं होती तब तक वे संसद चलने नहीं देंगी। वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने सदन में अंबेडकर की तुलना वेदव्यास से करते हुए बयान दिया कि कार्टून पूरी तरह से गलत है। एआईडीएमके, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, भारतीय जनता पार्टी, तेलगुदेशम पार्टी, कांग्रेस समेत सीपीआई, सीपीएम सांसदों ने भी पाठ्यपुस्तक पर जारी हमले के दौरान रामदास आठवले के सुर में सुर मिलाया। घबराए मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल ने सदन में सरकार की ओर से माफी मांगते हुए यह वादा किया कि पुस्तक से कार्टून हटा दिया जाएगा। (Scholars quit textbook body as government bans 1949 cartoon, The Hindu, 12 May 2012 New Delhi) दूसरे ही दिन किताब के दोनों सलाहकारों योगेन्द्र यादव और सुहास पलशीकर ने सरकार के माफी मांगने पर हैरानी जताते हुए सलाहकार पद से इस्तीफा दे दिया। इस होड़ में बढ़त बनाते हुए आरपीआई के कार्यकर्ताओं ने किताबों के एक सलाहकार रहे सुहास पलशीकर के पुणे स्थित दफ्तर पर हमला बोल दिया। (संपादकीय, जनसत्ता, नई दिल्ली, 14 मई 2012)।

यहीं उन विश्लेषणों पर भी एक निगाह डालना मुनासिब होगा, जिनमें दलित अस्मिता के मद्देनजर उक्त कार्टून

का भाष्य किया गया। कार्टून पर सबसे पहला आरोप यह लगाया गया कि इसमें एक कश्मीरी ब्राह्मण (जवाहरलाल नेहरू) डॉ. अंबेडकर पर कोड़े चला रहा है। दूसरा आरोप यह लगाया गया कि संविधान निर्माण प्रक्रिया की तुलना घोंघे की चाल से करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। यह भी कहा गया कि फिलहाल वह स्थिति ही आदर्श होगी कि किसी भी स्कूली पाठ्यपुस्तक में अंबेडकर के संघर्ष और उनकी उपलब्धियों के अलावा अन्य कुछ भी, किसी रूप में न हो। कुछ आशंकाएं भी जाहिर की गईं, मसलन इस कार्टून पर गैर-दलित छात्रों और शिक्षकों का क्या रुख होगा? कहीं यह कार्टून उन्हें डॉ. अंबेडकर पर कोई घटिया टिप्पणी करने के लिए तो नहीं उकसाएगा? कहीं वे लोग संविधान निर्माण में हुई देरी के लिए अंबेडकर को घोंघा मानते हुए जिम्मेदार तो नहीं ठहराएंगे? यह कार्टून छात्रों और अध्यापकों के मन में व्याप्त जातिगत पूर्वग्रहों को बाहर तो नहीं ले आएगा? यह दलित विद्यार्थियों के मन पर क्या प्रभाव छोड़ेगा जो वैसे ही सवर्ण छात्रों के अनुपात में बेहद कम संख्या में होते हैं? क्या इस कार्टून के साथ लिखा पाठ विद्यार्थियों के मन में उपजे उस धारणा को हटा पाएगा जो इस कार्टून से व्यक्त हो रही है? यूं यह सिर्फ एक भोला-भाला कार्टून है पर क्या कक्षा में पड़ने वाले इसके संभावित परिणाम को नजरअंदाज किया जा सकता है? (कार्टून विवाद और दलित, अनूप कुमार, जनसत्ता, नई दिल्ली, 01 जून 2012)। इस विरोध में एक स्वर उन बुद्धिजीवियों का भी जुड़ गया जो किसी भी नवाचार के प्रति यह आरोप लगाते हैं कि यह पश्चिमपरस्त है और साथ ही जो एनसीएफ 2005 के आलोक में बनी एनसीईआरटी की पुस्तकों को यह कहकर खारिज करते हैं कि इनके निर्माण में कथित धर्मनिरपेक्ष, उदारवादी और वामपंथी लोग शामिल थे। पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया को भी इस खेमे ने गलत ठहराते हुए जांच की मांग की। लाजमी होगा कि इस सिलसिले की बानगी भी देख ली जाए। एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक जे. एस. राजपूत ने नाखुशी जाहिर करते हुए कहा, 'मेरा मत है कि पाठ्यपुस्तक, रैपिड रीडर तथा मनोरंजन संबंधी किताबों में अंतर होना चाहिए। आज कार्टून टेलीविजन से लेकर अन्य माध्यमों तक विविध रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जो लोग पश्चिम से अभिभूत हैं वे कार्टून से बहुत प्रभावित हैं। पाठ्यपुस्तकों में कार्टून छपना मुझे तर्कसंगत नहीं लगता। जहां तक विवादित कार्टून की बात है, तो वह 1949 में भले सही रहा हो लेकिन आज उस रूप में इसे नहीं देखा जा सकता है। सभी को पता है कि संविधान निर्माताओं में कितनी तपे-तपाए लोग शामिल थे। संविधान को आज के संदर्भ में घोंघा जैसा बताना कैसे उचित कहा जा सकता है। संविधान और उसके निर्माताओं के प्रति यह कार्टून बच्चों में अच्छी छवि नहीं बनाता। ...एनसीईआरटी की पुस्तकों के लिखने का दायित्व अर्जुन सिंह के समय में कथित धर्मनिरपेक्ष, उदारवादी और वामपंथी लोगों को दिया गया। इन लोगों ने तमाम एनजीओ व मीडिया से जुड़े लोगों को भी अपने साथ जोड़ लिया। पुस्तक लेखन के लिए नियुक्त शिक्षकों को इस दौरान दरकिनार कर दिया गया। उनकी भूमिका केवल पुस्तक समिति से जुड़े बाहरी लोगों के सेवा-सत्कार तक सीमित रखी गई। मंत्री महोदय को इन सारी स्थितियों की जांच करानी चाहिए। (पाठ्यपुस्तकों में क्यों हों कार्टून, जे. एस. राजपूत, अमर उजाला, संपादकीय पृष्ठ, वाराणसी, 19 मई 2012) इन सभी आरोपों के मद्देनजर उन विशेषज्ञों की राय भी जानना जरूरी है जो पुस्तक निर्माण में बतौर विशेषज्ञ शामिल हुए थे।

आपत्तियों की दलील पर एक नजर और सवाल शैक्षिक विमर्श के नवाचारों का संसद में चली बहसों के दौरान जब मामले ने तूल पकड़ लिया, तब प्रत्येक पार्टी में श्रेय लेने की होड़ मच गई। पूरे प्रकरण के दौरान विशेषज्ञों की राय या इस तरह के नवाचारों के तर्क को विश्लेषित किए बिना सरकार ने घुटने टेक दिए। यहां यह याद कर लेना लाजिमी होगा कि संसद में एनसीईआरटी की किताबों पर पहले भी एक बहस 18 और 31 अगस्त 2006 को चली थी। उस समय प्रेमचंद पर दलित विरोधी और पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और धूमिल पर हिन्दू विरोधी होने के आरोप जड़े गए थे। फिलहाल इस प्रसंग का उल्लेख इसलिए जरूरी है कि दोनों प्रसंगों में तीन बातें समान रूप से लागू थीं, एक यह कि दोनों प्रसंगों में सभी राजनैतिक दलों (इनमें वामपंथी पार्टियों के सांसद भी शामिल हैं) ने किताबों को दलित विरोधी घोषित किया और सामग्री चयन में शामिल विशेषज्ञों



पर कार्रवाई करने की मांग की। तब हिन्दी किताबों में शामिल पाठों को आपत्तिजनक बताया गया था, अब राजनीति विज्ञान की किताबों में शामिल कार्टूनों को आपत्तिजनक होने का फरमान जारी किया गया है। दूसरी यह कि दोनों घटनाओं में संदर्भों से काटकर चयनित प्रसंगों का भाष्य किया गया। तीसरी बात यह कि दोनों प्रसंगों में दक्षिणपंथ से सहानुभूति रखने वाले विशेषज्ञों ने पाठ चयन में शामिल विशेषज्ञों को पश्चिमपरस्त और भारतीय संस्कृति विरोधी ठहराया। फिलहाल इस विश्लेषण का उद्देश्य है कार्टून विवाद पर बात की जाए। सबसे पहले इस आरोप की असलियत से वाकिफ हुआ जाए कि कार्टून चयन को अभारतीय परंपरा कहकर उन्हें हटा देने की वकालत कितनी जायज है? बिम्बों, प्रतीकों के संदर्भ पाठ को रोचक और आनंददायक कैसे बना देते हैं, इस शैक्षिक युक्ति को सैकड़ों साल पहले भारतीय संदर्भ में पं. विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र और हितोपदेश की रचना करते समझा था। बंदर, भालू, गदहा, लोमड़ी, मगरमच्छ इत्यादि के माध्यम से राजनीति और समाजशास्त्रीय संदर्भों के अध्यापन की जैसी युक्ति पं. विष्णु शर्मा ने ईजाद की थी। वह भारत ही नहीं विश्व के अन्य देशों के लिए भी एक नायाब तकनीक थी। कार्टून प्रसंग को भी बिम्बों-प्रतीकों की तकनीक का समकालीन अध्ययन-अध्यापन संदर्भ समझने में कोई गुरेज नहीं करना चाहिए। कहना न होगा यदि बिम्बों-प्रतीकों की परंपरा को ही अभारतीय परंपरा करार दिया जाए, तब इस तर्क से पंचतंत्र-हितोपदेश की परंपरा को भी अभारतीय कहना होगा।

डॉ. अंबेडकर वाले कार्टून पर छिड़े विवाद के संदर्भ में विस्तार से बात करने के पहले संसद की बहस के दौरान उभरे परिदृश्य का उल्लेख जरूरी है। किताबों में अनेक कार्टून शामिल हैं, जिनसे न सिर्फ भारतीय राजनीति की विकास यात्रा को ज्यादा बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलती है, बल्कि अनेक अप्रिय प्रसंगों को भी समझने में सहायता मिलती है, मसलन आपातकाल के दौरान सत्ता का चरित्र (एक कार्टून में इंदिरा गांधी के निर्णयों को प्रतीक रूप में स्पष्ट करने के लिए मंत्रीमंडलीय बैठक का चित्रण है, जिसमें इंदिरा गांधी का कार्टून काफी बड़ा है जबकि बाकी मंत्री नगण्य उपस्थिति दर्ज करते हुए काफी छोटे-छोटे हैं) या फिर क्षेत्रीय अस्मिता के उभार के दौरान उपजे राजनैतिक चरित्र को दर्शाने वाले बारहवीं कक्षा के वे कार्टून जिनके माध्यम से हिन्दी विरोधी द्रविण आंदोलन का वर्णन किया गया है। पाठ में लगभग ढाई पृष्ठों में द्रविण आंदोलन के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास यात्रा का सकारात्मक चित्रण किया गया है। कैसे केवल उत्तर भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों से द्रविण आंदोलन अपनी असहमति जाहिर करता है, पाठ में इसकी चर्चा है। इसी कड़ी में 1965 के हिन्दी विरोधी आंदोलन के उस पक्ष का चित्रण किया गया है, जिससे डीएमके की राजनीति को लोकप्रियता मिली। दरअसल समकालीन राजनीतिक चरित्रों को इस विकास यात्रा से ज्यादा दिलचस्पी अपनी उभरती या बनती हुई उस छवि से है, जिनका भय उन्हें कार्टून में चित्रित संदर्भों से निकलता नजर आता है। इस बात के प्रमाण संसद और समाचार चैनलों के बहसों के दौरान दिखाई पड़े। सलाहकार योगेन्द्र यादव की टिप्पणी ध्यान देने योग्य है, 'लोकसभा में हुई बहस से साफ हो गया कि अंबेडकर वाला कार्टून तो महज बहाना था, सांसदों की असली परेशानी कार्टूनों में उभरती उनकी खुद की छवि को लेकर है। लोकसभा की बहस में मुद्दा यह था कि इन पाठ्यपुस्तकों में सांसदों, राजनेताओं और राजनीतिक प्रक्रिया पर व्यंग्य करने वाले तमाम कार्टूनों को निकाला जाए। सरकार तुरंत मान भी गई और राजनीति शास्त्र की तमाम किताबों की पूरी समीक्षा का आदेश भी दे दिया।' (कार्टून पर गलतफहमियां - योगेन्द्र यादव, दैनिक

जागरण, संपादकीय पृष्ठ, वाराणसी, 17 मई 2012) यानी राजनीति की समकालीन बिसात पर किताबों का आकलन करने की कवायद शुरू की गई, जिसकी अनुगूंज दूर तक गई।

विवाद के पहले प्रायः इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया गया कि एनसीएफ 2005 के बाद एनसीईआरटी की राजनीति विज्ञान की पुस्तकों में पहली बार ठीक से डॉ. अंबेडकर के महत्त्व को रेखांकित किया गया। साथ ही अवधारणात्मक रूप से पुस्तक रचना में उनके विचारों को तरजीह दी गई। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के समकक्ष डॉ. अंबेडकर को पुस्तक में स्थान देना बदलाव की बयार का आगाज था। ऐसे में किताब के किसी अंश को संदर्भ से काटकर भाष्य करना ठीक नहीं। दूसरी बात, कार्टून का यह भाष्य कि नेहरू डॉ. अंबेडकर पर कोड़ा चला रहे हैं, कार्टून के रेखांकन से बाहर जाकर उसका अर्थ ढूंढ़ना है। उसी तरह चाबुक, लगाम जैसे प्रतीकों का ठेठ शाब्दिक भाष्य करना कार्टून की प्रतीक भाषा को न समझना है। पुस्तक के सलाहकार इस मसले पर ठीक ही कहते हैं, इस तर्क से तो हर कार्टून को अभद्र करार दिया जा सकता है। कार्टून वाले पृष्ठ पर छपे गद्यांश को नजरअंदाज करना पृष्ठ को ठीक से न समझने की जिद है। कार्टून के उद्देश्य को यदि ठीक से समझने की कोशिश की जाए तो उसका उद्देश्य साफ तौर पर समझा जा सकता है। योगेन्द्र यादव की टिप्पणी गौरतलब है, 'कार्टून का मूल उद्देश्य है संविधान निर्माण में हुई अनपेक्षित देरी की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट करना। यही बात प्रश्न के रूप में कार्टून के नीचे पूछी गई है। साथ के गद्यांश में उसका जवाब भी दिया गया है। जवाब यह है कि भारत की संविधान सभा ने दुनिया की अन्य संविधान सभाओं की तुलना में ज्यादा गहरी और विस्तृत चर्चा की थी। इस देरी के कारण ही हमारा संविधान अधिक बेहतर बन सका।' (कार्टून पर गलतफहमियां, योगेन्द्र यादव, दैनिक जागरण, संपादकीय पृष्ठ, वाराणसी, 17 मई 2012) किस तरह दलित मुद्दे को लेकर कांग्रेस और गांधी से अंबेडकर की असहमति बनी, पुस्तक इस मुद्दे को छुपाती नहीं है, बल्कि साफ तौर पर रेखांकित करती है। उसी तरह इस सिलसिले में एक और बात ध्यान देने योग्य है कि राजनीति विज्ञान की पुस्तकों में घटनाओं और ब्यौरों की जानकारी सुचिंतित विचार प्रक्रिया में पिरोई गई है। मसलन नौवीं कक्षा में संविधान निर्माण की प्रक्रिया से विद्यार्थियों का परिचय कराते हुए गांधी जी, बाबा साहेब और नेहरू के लंबे उद्धरण दिए गए हैं। उसी तरह दसवीं की किताब में सामाजिक और जातिगत गैर-बराबरी की विस्तार से चर्चा की गई है जिस पर निर्विवाद रूप से डॉ. अंबेडकर के विचारों की छाप है। जाहिर है आलोचनाओं की मुखरता में उक्त सभी बातों को नजरंदाज किया गया।

जरूरत इस बात की भी है कि इस विवाद की चर्चा के आलोक में उस पहलू पर भी बात की जाए जिससे शैक्षिक नवाचारों के आलोक में किताबों की रचना प्रक्रिया स्पष्ट हो सके। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 (एनसीएफ 2005) महज शब्द अधारित पाठ के स्थान पर ऐसे पाठों की हिमायत करती है जिसमें रचनात्मक साहित्य, अखबारी कतरनें, पत्रिकाएं, फिल्में, इश्तिहार, पोस्टर, कार्टून, इंटरनेट जैसे ज्ञान के विविध संसाधनों का रचनात्मक उपयोग हो सके। सीखने के सफर को बेहतरीन बनाने की इस प्रक्रिया के प्रयोग केवल राजनीति विज्ञान ही नहीं बल्कि अन्य विषयों, मसलन हिन्दी, अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र आदि अन्य विषयों में भी किया गया है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया का असर किताबों की अंतर्वस्तु और प्रस्तुति में भी मौजूद हो, इसका ध्यान रखा गया। यह आरोप लगाया गया कि राज्य द्वारा चयनित खास राजनैतिक आग्रहों वाले विशेषज्ञों और एनजीओ के लोगों द्वारा किताबें तैयार कराई गईं। जबकि तथ्य यह है कि विशेषज्ञों के चयन में जिस लोकतांत्रिक प्रक्रिया को अपनाया गया उसमें चार समूहों से चयनित शख्सियतें शामिल थीं, जिसकी निगरानी एक राष्ट्रीय निगरानी समिति ने किया। इस संदर्भ में शिक्षाविद् मुकुल प्रियदर्शिनी की टिप्पणी ध्यान देने लायक है, 'इस प्रक्रिया के दौरान शिक्षक सभी दस्तावेजों को तैयार करने के लिए गठित समितियों का अभिन्न अंग थे। प्रत्येक समिति में शिक्षकों के अलावा एनसीईआरटी के प्रतिनिधि, शिक्षा से जुड़े गैर-सरकारी संगठनों के सदस्य और विश्वविद्यालयों से जुड़े विभिन्न विशेषज्ञ और

शिक्षाविद् शामिल थे। पाठ्यपुस्तकें निगरानी समिति द्वारा देखीं और अनुमोदित की गईं। इस प्रकार ये किताबें चार अलग-अलग किस्म के संस्थानों और संगठनों के लोगों का सामूहिक प्रयास थीं।' (तर्कविहीन विवाद के खतरे, मुकुल प्रियदर्शिनी, जनसत्ता 16 जून 2012) यानी टिप्पणियों के पूर्व किताबों के बनने की इस प्रक्रिया को ध्यान में रखना जरूरी नहीं समझा गया। सांसदों के एक तबके ने यह कहा कि ये किताबें शंका पैदा करती हैं। सवाल यह भी है कि क्या किताबों का काम शंका पैदा करना नहीं होना चाहिए? क्या किताबों को आनुष्ठानिक आस्था तक सीमित कर देना चाहिए।

प्रो. सुहास पलशीकर के पुणे स्थित कार्यालय पर हुए हमले ने इस तरह की परियोजनाओं से जुड़े बुद्धिजीवियों को इस अबोले सेंसरशिप से भर दिया है कि वे हर सृजनात्मक पहल को इस तरह के सेंसरशिप की निगाह से पहले परखें। बकौल योगेन्द्र यादव, 'सबसे खराब सेंसरशिप वह होती है जो लेखक के अवचेतन में शक्ल लेती है।' (इस प्रतिबंध के बड़े खतरे, योगेन्द्र यादव, अमर उजाला, वाराणसी 17 मई 2012) फिलहाल यही कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के ऐसे सर्जनात्मक प्रयासों को समझे, विश्लेषित किए बिना सियासत के रहनुमाओं और दलित पैरोकारों के एक तबके ने विरोध के जिस रवैए को अख्तियार किया है, वह भारत के शैक्षिक परिवेश के लिए चिंताजनक है।

शिक्षकों-विद्यार्थियों की नजर में कार्टून और नवाचार का संसार

इस विवाद के मद्देनजर मैंने यह जानने का प्रयास किया कि नवाचारों यानी पाठों में कार्टूनों, चित्रकथाओं या इस तरह की सर्जनात्मक सामग्रियों के संयोजन के बारे में वे लोग क्या सोचते हैं जो सीधे इन किताबों की दुनिया से जुड़े हैं। मैंने सात अध्यापकों और नौ विद्यार्थियों से इस सिलसिले में कुछ प्रश्नों के माध्यम से राय मांगी। इस समूह में दो केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों और चार पब्लिक स्कूल के शिक्षक/शिक्षिकाओं से बात की गई। उसी तरह केन्द्रीय विद्यालय के पांच विद्यार्थियों और पब्लिक स्कूल के चार विद्यार्थियों से राय मांगी गई। निश्चित रूप से इस आकलन को संपूर्ण आकलन कहना मुश्किल है। पर एक हद तक शैक्षिक बदलावों पर शिक्षा से जुड़े अध्यापकों/अध्यापिकाओं और विद्यार्थियों की राय का एक माकूल जरिया कहा जा सकता है। एक नजर उन सवालों पर जिन्हें शिक्षक/शिक्षिकाओं के सामने रखा गयाः

1. आपने इन पुस्तकों से पहले की पाठ्यपुस्तकों से भी बच्चों को पढ़ाया है। इन किताबों और पहले वाली किताबों में आपको क्या फर्क नजर आता है?
2. क्या इन पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु में पहले वाली पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु से किसी तरह का फर्क है? आप इस फर्क को एक शिक्षक की नजर से कैसे देखते हैं?
3. नई पाठ्यपुस्तकों और पुरानी पाठ्यपुस्तकों को पढ़ाने के तरीके में आपने कोई फर्क महसूस किया है?
4. क्या इन पुस्तकों को पढ़ाने से बच्चों के सीखने पर भी कोई फर्क पड़ा है?
5. क्या ये पुस्तकें बच्चों को राजनीति की बेहतर समझ विकसित करने में सफल हैं या समस्याएं पैदा करती हैं?

उसी तरह छात्र-छात्राओं से भी कुछ जिज्ञासाएं रखी गईं, बेहतर होगा उन पर भी एक नजर डाल ली जाएः

1. आप लोगों को इन पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने का अनुभव कैसा रहा है?
2. क्या ये पाठ्यपुस्तकें हमारे आसपास की दुनिया में चल रही राजनीति को समझने में मदद करती हैं?
3. इन किताबों को पढ़ने में शिक्षकों की मदद की कितनी आवश्यकता होती है?
4. क्या ये किताबें रटने पर बल देती हैं?
5. इन किताबों में आए चित्र और कार्टून के बारे में आपकी क्या राय है? ये कार्टून किसी का अपमान करते हैं?

6. आप इन कार्टून को कैसे पढ़ते हैं? क्या ये टैक्स्ट को समझने में किसी तरह की मदद करते हैं?
7. कुल जमा किताब के लिखने और दिए गए सवालों पर आपकी क्या राय है?

आश्चर्यजनक रूप से केन्द्रीय विद्यालय और पब्लिक स्कूल के शिक्षकों-शिक्षिकाओं की प्रतिक्रियाओं में अंतर दिखे। जहां केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों ने नवाचारों के प्रति बदली हुई निगाह का परिचय दिया, वहीं अधिकांश पब्लिक या कॉन्वेंट स्कूल के शिक्षकों-शिक्षिकाओं ने कोई नई निगाह का परिचय नहीं दिया। पहले सवाल के जवाब में केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों ने कार्टून या चित्रकथाओं या फिर ज्ञान के अन्य स्रोतों को सकारात्मक रूप से अधिगम की प्रक्रिया में सहायक बताया, वहीं पब्लिक या कॉन्वेंट स्कूल के शिक्षकों-शिक्षिकाओं को पहले की किताबों और नई किताबों में कोई खास अंतर नजर नहीं आया। दूसरे सवाल के जवाब में केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों ने कहा कि उन्हें पहले की अपेक्षा नई किताबों की विषयवस्तु में फर्क नजर आया है, जिनसे आलोचनात्मक समझ विकसित करने में सहायता मिलती है। उसी तरह उन्हें एक शिक्षक की नजर से ऐसा बदलाव, नजरिया बनाने/विकसित करने में सहायक लगा। पब्लिक या कॉन्वेंट स्कूल के शिक्षकों-शिक्षिकाओं के जवाब के मुताबिक पाठ्यपुस्तकों की सामग्री में कोई खास अंतर नजर नहीं आया। तीसरे सवाल के जवाब में केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों ने कहा कि उन्हें पहले की अपेक्षा नई किताबों को पढ़ाने के लिए अन्य अध्ययन सामग्रियों मसलन पुस्तकालय में उपलब्ध पाठ्यपुस्तकों से इतर अन्य किताबों या पत्र-पत्रिकाओं से सहायक सामग्री के रूप में सहायता लेनी पड़ती है। जबकि तीन पब्लिक या कॉन्वेंट स्कूल के शिक्षकों-शिक्षिकाओं के अनुसार वे पहले जैसे पढ़ा रहे थे वैसे ही अभी भी पढ़ा रहे हैं। एक अध्यापक की राय केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापक की तरह ही थी। चौथे सवाल के जवाब में अध्यापक-अध्यापिकाओं की राय अलग-अलग थी, चार लोगों की राय थी कि बच्चे/बच्चियां पहले की अपेक्षा बेहतर समझ बना पा रहे हैं, जबकि दो अध्यापकों की राय थी ऐसे बदलावों से बच्चों के सीखने में कोई अंतर नहीं आता। पब्लिक या कॉन्वेन्ट स्कूल के तीन अध्यापकों/अध्यापिकाओं की राय के अनुसार इन किताबों से कुछ लोगों की भावनाएं आहत होती हैं जबकि एक पब्लिक या कॉन्वेन्ट स्कूल के अध्यापक और तीन केन्द्रीय विद्यालयों के अध्यापकों/अध्यापिकाओं ने यह कहा कि राजनीति की व्यापक समझ विकसित करने में ऐसी किताबें सहायक हैं। संभव है कि केन्द्रीय विद्यालय के अध्यापकों की राय अलहदा इसलिए हो कि उनके लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या से संबधित नवाचारों को जानना/समझना अनिवार्य है। पब्लिक/कॉन्वेन्ट स्कूलों में शिक्षा के प्रति जारी समझ पर पूरे प्रकरण के विश्लेषण से एक तथ्य उभर कर सामने आया कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के आलोक में शिक्षक/शिक्षिका नवाचारों के गंभीर प्रशिक्षण से प्रायः वंचित हैं।

कुछ ऐसी ही सचाई विद्यार्थियों के सर्वेक्षण के दौरान भी उभरी। केन्द्रीय विद्यालय के पांच और पब्लिक/कॉन्वेन्ट स्कूल के एक विद्यार्थियों की राय के मुताबिक नई किताबें पढ़ने में उन्हें मजा आता है और उनके मन में किताबों के कारण इस बात की ललक भी जगती है कि वे किताब से संबंधित और जानकारियां भी हासिल करें। उन्हें कार्टून और चित्रकथाएं रोचकता बढ़ाने के साथ-साथ समझ को बेहतरीन ढंग से विकसित करने में सहायक लगीं। उन्हें ऐसा लगता है कि इन किताबों से समकालीन राजनीति को समझने में उन्हें सहायता मिलती है। उन्हें इस बात का अहसास भी है कि उनकी किताबें रटने की बजाय समझ बढ़ाने के लिए उकसाती हैं। लेकिन पब्लिक/कॉन्वेन्ट स्कूल के चार विद्यार्थियों को ऐसा लगता है कि उन्हें किताबों में कुछ नया नहीं दिखता और दिए गए सवालों को हल करने में उन्हें परेशानी होती है। उन्हें कार्टून और चित्रकथाओं का संयोजन उल्लेखनीय नहीं लगा। उनकी राय थी कि वे अपनी समझ रटकर ही बढ़ाते हैं। उन्हें कोई-कोई कार्टून सम्माननीय लोगों को अपमानित करने वाला भी लगा। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि इस रायशुमारी को आत्यंतिक सच नहीं कहा जा सकता, लेकिन इस बात से इनकार भी नहीं किया जा सकता कि यह रायशुमारी शैक्षिक नवाचारों और उनके आलोक में शिक्षक/शिक्षिकाओं और विद्यार्थियों की समझ के आकलन में सहायक है। ◆